KAR_20_APRIL_2022.qxd 20-04-2022 14:38 Page 1

साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 7, अंक : 35 (प्रति बुधवार), इन्दौर 20 अप्रैल 2022 से 26 अप्रैल 2022 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

जलवायु परिवर्तन की चिंता

मुंबई। जलवायु में तेजी से आ रहे बदलाव तथा उनसे निपटने के लिए उचित रणनीतियों को अपनाने में अक्षमता के बीच ऐसे संस्थान बनाना आवश्यक लग रहा है, जो भारत में इसके असर पर नजर रखें, इससे होने वाली जटिलताओं के बारे में चेतावनी दें तथा समुचित हल सुझाने का काम करें।

इस समय देश इन कामों के लिए काफी हद तक जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी) तथा अन्य विदेशी एजेंसियों पर निर्भर है। हालांकि आईपीसीसी की रिपोर्ट अक्सर शोधपरक होती हैं और उनमें क्षेत्रवार तथा देश आधारित अवलोकन भी रहता है लेकिन वे भारत जैसे देश की जरूरतें पूरी नहीं कर पातीं, जहां के पर्यावास में अत्यधिक विविधता है। देश में ऐसी संस्थागत व्यवस्था बनाने में समस्या नहीं आनी चाहिए क्योंकि हमारे पास पहले ही कुशल लोग हैं और कुछ हद तक इसके लिए आवश्यक बुनियादी ढांचा भी हमारे पास है। आईपीसीसी के लिए काम कर रहे कई वैज्ञानिक जो डेटा संग्रहीत करते हैं, उसका विश्लेषण करते हैं तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो इन सूचनाओं के आधार पर रिपोर्ट लिखते हैं, वे सभी भारतीय हैं। एक स्थानीय संस्था जो भारत केंद्रित जलवायु परिवर्तन संबंधी काम करे, वह यकीनन अधिक उपयोगी साबित होगी।

भारतीय मौसम विभाग (आईएमडी) ने बीते कई दशकों में मॉनसून के प्रदर्शन में आने वाले बदलाव को जिस प्रकार दर्ज किया है उससे भी भरोसा बनता है कि ऐसा किया जा सकता है। गत 14 अप्रैल को जारी अपनी ताजा रिपोर्ट में उसने कहा कि 1901 से 2020 के बीच दक्षिण-पश्चिम मॉनसून से होने वाली बारिश 1921 तक अपेक्षाकृत शुष्क रही और इसके बाद सन 1971 तक बारिश अपेक्षाकृत अच्छी हुई। उसके पश्चात एक बार फिर कम बारिश का दौर शुरू हुआ जो आज तक जारी है। इसके कारण सामान्य बारिश का मानक भी कम करना पड़ा। पुणे स्थित भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान द्वारा तैयार एक अन्य हालिया रिपोर्ट ने भारतीय उपमहाद्वीप के मौसम तथा जलवायु पर मानवीय गतिविधियों के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन में हिंद महासागर तथा हिमालय के बीच के क्षेत्र पर खास ध्यान दिया गया है। उक्त घटनाएं तथा पेड़ों से बेमौसम पत्ते झड़ना, जंगलों में आग लगने की घटनाएं बढ़ना, फसलें समय से पहले पकना आदि ऐसी घटनाएं हैं, जिन्हें स्थानीय संस्थान बेहतर ढंग से दर्ज कर सकेंगे। ऐसा नहीं है कि भारत जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए समुचित नीतियां नहीं बना पाता है बल्कि असल समस्या उनका प्रभावी क्रियान्वयन करने तथा वांछित नतीजे हासिल करने में है। हमने वर्ष 2008 में जलवायु परिवर्तन पर जो राष्ट्रीय कार्य योजना बनायी थी, उसमें भी इस बात को महसूस किया जा सकता है। उस विस्तारित कार्य योजना में अर्थव्यवस्था के कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए आठ उप लक्ष्य तय किए गए थे। 30 से अधिक राज्यों तथा केंद्र शासित प्रदेशों ने भी जलवायु कार्य योजना पेश की हैं। परंतु इस दिशा में ज्यादा प्रगति नहीं हो सकी क्योंकि संस्थान किफायती और समन्वित क्रियान्वयन नहीं कर सके। दिलचस्प है कि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर देश के प्रतिनिधित्व तथा नीतियों और कदमों में समन्वय सुनिश्चित करने के लिए जलवायु परिवर्तन पर प्रधानमंत्री के विशेष दूत का पद स्थापित किया गया लेकिन उसे अज्ञात कारणों से समाप्त कर दिया गया। जलवायु परिवर्तन के कारण बनने वाली आपात स्थितियों को लेकर हमें जिस प्रकार अचानक प्रतिक्रिया देनी पड़ी हैं उससे भी ऐसे संस्थानों की जरूरत स्पष्ट रूप से सामने आती है। अचानक दी जाने वाली प्रतिक्रियाएं अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरतीं। यह आवश्यक है कि हम टिकाऊ स्वदेशी संस्थान बनाकर जलवायु परिवर्तन संबंधी चिंताओं को क्षेत्रवार तथा संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए समग्रता में भी हल कर सकें। ऐसा नहीं किया गया तो तमाम अच्छी नीतियों के बावजूद जलवायु परिवर्तन के खिलाफ भारत की लड़ाई कमजोर बनी रहेगी।

हवा में लंबे समय तक बना रहता है खाना पकाने से होने वाला प्रदूषण

मुंबई। वायुमंडलीय एरोसोल की बूंदें जलवायु को प्रभावित करते हैं। हानिकारक प्रदूषक हवा में लंबी दूरी तय कर सकते हैं। इसलिए ऐसे एरोसोल के बने रहना उनके पर्यावरणीय प्रभाव को निर्धारित कर सकता है। वायुमंडलीय एरोसोल के कार्बनिक हिस्से में विभिन्न प्रकार के अणु शामिल होते हैं, जिनके अलग-अलग तरह के कार्य होते हैं, जो मौसम और पर्यावरण के साथ भिन्न होते हैं।

कार्बनिक एरोसोल जैसे कि खाना पकाने में उत्सर्जित होने वाला प्रदूषण कई दिनों तक वातावरण में बना रह सकता हैं। खाना पकाने में उत्सर्जित होने वाला फैटी एसिड द्वारा बने नैनोस्ट्रक्चर हवा में छोड़े जाते हैं। उन प्रक्रियाओं की पहचान करना जो इस प्रक्रिया को नियंत्रित करती हैं कि ये एरोसोल वातावरण में कैसे परिवर्तित होते हैं। अब वैज्ञानिक पर्यावरण और जलवायु पर उनके प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने और उनका अनुमान लगाने में सक्षम होंगे। बर्मिंघम और बाथ विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञों ने ओलिक एसिड की पतली फिल्मों के व्यवहार की जांच करने के लिए ऑक्सफोर्ड में हार्वेल कैंपस आधारित डायमंड लाइट सोर्स और सेंट्रल लेजर फैसिलिटी में उपकरणों का इस्तेमाल किया। फैटी एसिड आमतौर पर खाना बनाने के दौरान जारी होता है। अध्ययन में वे विशेष आणविक गुणों का विश्लेषण किया गया जो इन्हें नियंत्रित करते हैं कि वायुमंडल में कितनी तेजी से एरोसोल उत्सर्जन को तोड़ा जा सकता है। फिर प्रयोगात्मक आंकड़ों के साथ संयुक्त सैद्धांतिक मॉडल का उपयोग करके टीम यह अनुमान लगाने में सक्षम थी कि खाना पकाने से उत्पन्न एरोसोल पर्यावरण में कितनी देर तक बने रह सकते हैं। इस प्रकार के एरोसोल लंबे समय से शहरी क्षेत्रों में खराब वायु गुणवत्ता से जुड़े हुए हैं, लेकिन मानव निर्मित जलवायु परिवर्तन पर उनके प्रभाव का आकलन करना मुश्किल है। यह एरोसोल के भीतर पाए जाने वाले अणुओं की विविध श्रेणी और पर्यावरण पर उनका अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। खाना पकाने के दौरान उत्सर्जित अणुओं के नैनोस्ट्रक्चर की पहचान करके, जो कार्बनिक एरोसोल के टूटने को धीमा कर देता है, यह मॉडल करना संभव हो जाता है कि उन्हें कैसे ले जाया जाता है और वातावरण में फैलाया जाता है। यूनिवर्सिटी ऑफ बर्मिंघम स्कूल ऑफ ज्योग्राफी, अर्थ एंड एनवायर्नमेंटल साइंसेज के अध्ययनकर्ता डॉ. क्रिश्चियन पफ्रांग ने कहा कि यूके में कुकिंग एरोसोल 10 प्रतिशत तक पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार है। उन्होंने कहा एयरोसोल व्यवहार का अनुमान लगाने के सटीक तरीके खोजने से, यह हमें जलवायु परिवर्तन में उनके योगदान का आकलन करने के लिए और अधिक सटीक तरीके प्रदान करेगा। बाथ विश्वविद्यालय के सह-अध्ययनकर्ता डॉ. एडम स्क्वायर्स ने कहा हम तेजी से पता लगा रहे हैं कि खाना पकाने से इन फैटी एसिड जैसे अणु खुद को दोहरी परत और अन्य नियमित आकार और हवा में तैरने वाले एयरोसोल की बूंदों के भीतर के ढेर में व्यवस्थित कर सकते हैं।

KAR_20_APRIL_2022.qxd 20-04-2022 14:38 Page 2

न बारिश न साधन, हर दिन जीवन के लिए संघर्ष कर रहे लाखों अफ्रीकी परिवार

केन्या (एजेंसी)। बारिश के मौसम को शुरू हुए अफ्रीका में करीब एक महीना हो चुका है, इसके बावजूद हॉर्न ऑफ अफ्रीका (इथियोपिया, केन्या, सोमालिया) का यह क्षेत्र अब तक सूखे की मार और पानी की कमी से जूझ रहा है। नतीजन यहां रहने वाले लाखों परिवार हर दिन अपने जीवन के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि यदि परिस्थितियां जल्द न बदली तो यहां रहने वाले करीब 2 करोड़ लोगों के लिए पेट भरना नामुमकिन हो जाएगा।

विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्लूएफपी) का कहना है कि समय तेजी से हमारे हाथों से निकला जा रहा है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो एक तरफ जहां सोमालिया जो पहले ही भुखमरी से जूझ रहा है, वो अगले छह महीनों में आकाल का सामना करने को मजबूर हो जाएगा। एक तरफ जहां सूखे के कारण फसलें सूख रही हैं, वहीं घटती मानवीय सहायता के चलते भुखमरी से ग्रस्त लोगों का आंकड़ा तेजी से बढ़ रहा है। भुखमरी का आलम यह है कि करीब 72 लाख इथियोपियन पहले ही खाली पेट सोने को मजबूर हैं। देखा जाए तो इथियोपिया 1981 के बाद से अपने सबसे गंभीर सूखे का सामना कर रहा है। इसी तरह केन्या में भी पांच लाख से ज्यादा लोग भुखमरी के भयावह स्तर से बस एक कदम दूर हैं। देखा जाए तो दो वर्षों से भी कम समय में केन्या में ऐसे लोगों की संख्या चार गुना से ज्यादा बढ़ गई है, जिन्हें अपना जीवन चलाने के लिए सहायता की जरुरत है। छोटी अवधि के लिए जारी बारिश के विश्लेषण के अनुसार सूखे के कारण केन्या में 31 लाख लोग आने वाले वक्त में खाने की कमी का शिकार बन सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार, लगातार तीन मौसमों में हुई औसत से कम बारिश ने भुखमरी की समस्या को और विकराल बना दिया है। ऐसे में उन परिवारों के लिए समय तेजी से निकलता जा रहा है, जो जीवित रहने के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं। सोमालिया में भी करीब 60 लाख लोग या करीब 40 फीसदी आबादी तीव्र खाद्य असुरक्षा का सामना कर रही है। बारिश और मानवीय सहायता के आभाव में वहां आकाल पड़ सकता है। इसी तरह इथियोपिया में कुपोषण की दर आपातकाल की सीमा से काफी ऊपर जा चुकी है। ऐसा नहीं है बारिश की कमी और सूखे ने केवल इंसानों को ही अपना निशाना बनाया है। पता चला है कि दक्षिणी इथियोपिया और केन्या के शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में लगभग 30 लाख पशुओं की जान इस सूखे ने लील ली है। वहीं 2021 के मध्य से सोमालिया में 30 फीसदी परिवारों के मवेशी इसका निवाला बन चुके हैं। इतना ही नहीं कई अफ्रीका, देश संघर्ष की आग में जल रहे हैं, जबकि साथ ही खाद्य कीमतों की बढ़ते कीमते, आर्थिक असुरक्षा और टिड्डियों के हमले उनके परेशानियों को और बढ़ा रहे हैं। इस बारे में डब्ल्यूएफपी से जुड़े पूर्वी अफ्रीका के क्षेत्रीय निदेशक माइकल डनफोर्ड का कहना है कि, ÷हम पिछले अनुभव से जानते हैं कि मानवीय आपदा को रोकने के लिए जल्द कार्रवाई कितनी महत्वपूर्ण है, फिर भी प्रतिक्रिया शुरू करने की हमारी क्षमता सीमित है।उनके अनुसार पिछले साल से ही डब्ल्यूएफपी और अन्य एजेंसियां इस बारे में चेतावनी दे रही है कि अगर तुरंत कार्रवाई न की गई तो यह सूखा विनाशकारी रूप ले सकता है, लेकिन धन के आभाव में वो जरुरी कदम न उठा पाने के लिए मजबूर हैं। रिपोर्ट के मुताबिक 2016-17 में हॉर्न ऑफ अफ्रीका में ऐसा ही सूखा पड़ा था, लेकिन जल्द कार्रवाई ने तबाही को टाल दिया था। वहीं अब 2022 में संसाधनों की भारी कमी के चलते इस बात की आशंका कहीं ज्यादा बढ़ गई है कि आने वाले वक्त में इस आपदा को रोकना संभव नहीं होगा, जिसका परिणाम यहां रहने वाले लाखों परिवारों को भुगतना होगा। अंतराष्ट्रीय एजेंसी की मानें तो यूक्रेन में जारी संघर्ष के चलते हॉर्न ऑफ अफ्रीका की स्थिति और भी ज्यादा खराब हो गई है, क्योंकि इस युद्ध के चलते भोजन और ईंधन की लागत लगातार बढ़ रही है। ऐसे में डब्ल्यूएफपी का कहना है कि सूखा प्रभावित देशों के इससे सबसे ज्यादा प्रभावित होने की संभावना है। अफ्रीका में विशेष रूप से इथियोपिया और सोमालिया में खाने की कीमतें आसमान छू रही हैं। गौरतलब है कि यह क्षेत्र काला सागर क्षेत्र के देशों से आने वाले गेहूं पर बहुत ज्यादा निर्भर करता है। इसी तरह इस क्षेत्र से उर्वरकों की हो रही कम आपूर्ति भी चिंता का विषय है। ऐसे में विशेषज्ञों का मानना है कि जब वो यूक्रेन युद्ध के पहलुओं पर विचार कर रहे हो तो उन्हें हॉर्न ऑफ अफ्रीका की जरूरतों के बारे में सोचना चाहिए। ऐसे में इस मानवीय आपदा से निपटने के लिए डब्ल्यूएफपी ने फरवरी 2022 में जरुरी फंडिंग की अपील वैश्विक समुदाय से की थी लेकिन उसे जरुरत का केवल 4 फीसदी ही मिल पाया था। ऐसे में स्थिति से निपटने के लिए अगले छह महीनों में डब्ल्यूएफपी को करीब 3,600 करोड़ रुपए की जरुरत है, जिसकी मदद से स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

साभार - डाउन टू अर्थ

अब तक के उच्चतम स्तर पर पहुंची विश्व खाद्य जिंसों की कीमतें- एफएओ

मुंबई खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) ने अपनी ताजा रिपोर्ट में कहा है कि फरवरी की तुलना में मार्च में विश्व खाद्य कीमतों में लगभग 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसे अब तक की सबसे अधिक वृद्धि बताया गया है।एफएओ ने 8 अप्रैल को जारी एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा, विश्व खाद्य वस्तुओं की कीमतों ने मार्च में अपने उच्चतम स्तर तक पहुंचने के लिए एक महत्वपूर्ण छलांग लगाई। रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण इसमें वृद्धि की पहले से ही संभावना जताई जा रही थी।

एफएओ ने अपने नवीनतम खाद्य मूल्य सूचकांक रिपोर्ट में कहा, काला सागर क्षेत्र में युद्ध की वजह से अनाज और वनस्पति तेलों के बाजार को बड़ा झटका लगा है। रिपोर्ट के मुताबिक मार्च में औसत सूचकांक 159.3 अंक था, जो फरवरी के स्तर से 12.6 प्रतिशत अधिक है। फरवरी 1990 में जब से एफएओ विश्व खाद्य वस्तुओं की कीमतों की निगरानी कर रहा है, तब से लेकर अब तक का सबसे उच्चतम स्तर बताया गया है। अगर इसकी तुलना मार्च 2021 से की जाए तो यह अभूतपूर्व 33.6 प्रतिशत अधिक है। एफएओ अनाज (सेरेल) मूल्य सूचकांक फरवरी की तुलना में मार्च में 17.1 प्रतिशत अधिक था, जो यूक्रेन में युद्ध के परिणामस्वरूप गेहूं और सभी मोटे अनाज की कीमतों में बड़े पैमाने पर बढ़ोतरी की वजह से हुआ। यहां यह उल्लेखनीय है कि रूस और यूक्रेन मिलकर विश्व के गेहूं और मक्के के निर्यात में क्रमशः 30 प्रतिशत और 20 प्रतिशत का योगदान करते हैं। एफएओ के मुताबिक मक्के की कीमत भी बढ़ रही है। इसमें फरवरी से 19.1 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। एफएओ ने कहा, यूक्रेन में बंदरगाह बंद होने से देश से निर्यात सीमित हो रहा है, जबकि रूसी संघ से निर्यात में भी बाधाएं आ रही हैं। यह स्थिति आगे भी जारी रहने का अनुमान लगाते हुए कहा गया है कि अभी आने वाले दिनों में कीमतें और अधिक बढ़ सकती हैं। खाद्य मूल्य सूचकांक पर अपने विस्तृत नोट में एफएओ ने कहा, काला सागर क्षेत्र में शिपमेंट की आवाजाही में आई कमी की वजह से निर्यात का नुकसान हुआ और इस वजह से जहां वैश्विक कीमतें बढ़ी, वहीं आयात में कमी आई और मांग में वृद्धि हुई। खासकर उन देशों में कीमतों में अधिक वृद्धि हुई, जहां अनाज का स्टॉक कम था। युद्ध के कारण हुए व्यवधान ने सूरजमुखी के बीज के तेल की कीमतों को भी बढ़ा दिया है। एफएओ ने कहा, एफएओ वनस्पति तेल मूल्य सूचकांक 23.2 प्रतिशत बढ़ा। इसमें सूरजमुखी के बीज के तेल की मात्रा अधिक है, क्योंकि यूक्रेन पूरी दुनिया में सूरजमुखी के बीज का तेल निर्यात करता है। एफएओ के महानिदेशक क्यू डोंग्यु ने मार्च में एक बयान में कहा था कि खाद्य वस्तुओं के दो प्रमुख निर्यातक देशों के बीच छिड़े युद्ध की वजह से वैश्विक स्तर पर खाद्य असुरक्षा बढ़ सकती है।

साभार - डाउन टू अर्थ

KAR_20_APRIL_2022.qxd 20-04-2022 14:38 Page 3

क्या फिनलैंड ने रेडियोधर्मी नाभिकीय कचरे के सुरक्षित प्रबंधन का रास्ता निकाल लिया है?

ओंकेलो। नाभिकीय ऊर्जा के चैंपियन फिनलैंड का दावा है कि उसने इससे जुड़े एक बड़े मुद्दे यानी रेडियोधर्मी नाभिकीय कचरे के सुरक्षित प्रबंधन का रास्ता निकाल लिया है। वह इसे कचरे को जमीन के अंदर ओंकेलो नाम की प्रणाली में संग्रहित करेगा।

फिनिश भाषा में ओंकेलो का मतलब एक गड्ढा है, जिसे पांच सौ मीटर गहराई में भूमिगत निपटान प्रणाली के तौर पर स्थायी रूप से इस्तेमाल किए गए परमाणु ईंधन को संग्रहीत करने के लिए डिजाइन किया गया है। यह एक गहरा भूवैज्ञानिक भंडार है, जो आमतौर पर एक स्थिर चट्टान वाली जगहों में सतह के नीचे कई सौ मीटर या उससे अधिक की गहराई पर बनाया जाता है। देश के स्वामित्व वाली कंपनी और परियोजना में योगदानकर्ताओं में से एक फिनलैंड लिमिटेड के वीटीटी तकनीकी अनुसंधान केंद्र, के मुताबिक, ओंकेलो की पूरी प्रणाली की निगरानी करने के लिए इसमें अधिकतम पांच सौ सेंसर लगाए गए हैं। वीटीटी के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ आर्टो लाइकारी के मुताबिक, 'इसकी निगरानी यह सुनिश्चित करती है कि ओंकेलो भंडार, बाहरी दुनिया को नाभिकीय ईंधन के कचरे से सुरक्षित रखेगा।' देश के स्वामित्व वाली कंपनी की सहयोगी व एक फिनिश परमाणु कचरा प्रबंधन संगठन पोसिवा ने ओंकेलो के लिए परिचालन लाइसेंस जमा कर दिया है और उसके स्वीकृत होने की प्रतीक्षा कर रहा है। वीटीटी की परियोजना निदेशक एरिका हॉल्ट ने डाउन टू अर्थ को बताया कि पोसिवा अगले साल इस पूरी निपटान प्रक्रिया का अंतिम परीक्षण करेगा, हालांकि इसमें रेडियोधर्मी तत्व शामिल नहीं होंगे। माना जा रहा है कि 2024 से यह काम करना शुरू कर देगा।

नाभिकीय कचरे की समस्या- पिछले कई सालों से नाभिकीय उद्योग, कचरे की समस्या का समाधान खोजने की कोशिश कर रहा है। ये कचरा नाभिकीय जीवन-चक्र के दौरान विभिन्न चरणों में पैदा होता है, जैसे- यूरेनियम अयस्क के खनन से, यूरेनियम ईंधन के उत्पादन से और रिएक्टर में बिजली पैदा करने से। यह कचरा कई घंटों, कई महीनों और यहां तक कि सैकड़ों -हजारों साल तक रेडियोधर्मी बना रह सकता है। रेडियोधर्मिता की सीमा के आधार पर, नाभिकीय कचरे को निम्न और मध्यवर्ती स्तर के कचरे और उच्च स्तर के कचरे के रूप में बांटा जाता है। लगभग 97 प्रतिशत कचरा या तो निम्न या फिर मध्यवर्ती स्तर का कचरा है। बाकी उच्च-स्तर का कचरा है जैसे कि इस्तेमाल किए गए यूरेनियम ईंधन। अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण के मुताबिक, एक हजार मिलियन वाट का एक प्लांट हर साल उच्च-स्तर का लगभग तीस टन नाभिकीय कचरा निकालता है। भौतिक विज्ञानी एमवी रमना ने कहा, ' यहां तक कि निम्न स्तर का कचरा भी लोगों और दूसरे सजीवों के लिए हानिकारक होगा, जब तक कि वह रेडियोधर्मी बना रहता है।'

समस्या से निपटने के लिए क्या कर रहे देश ?- कुछ देश कचरे के उत्पाद न की जगह पर ही उसका भंडारण कर रहे हैं। हालांकि इससे रेडियोधर्मी रिसाव का खतरा होता है। उदाहरण के लिए - संयुक्त राज्य अमेरिका में, इस्तेमाल किए जा चुके ईंधन को एक कंक्रीट और स्टील के कंटेनर में संग्रहित किया जाता है जिसे सूखा पीपा कहा जाता है। भारत और कुछ दूसरे देश इस्तेमाल किए गए 97-98 फीसद नाभिकीय ईंधन के कचरे से प्लूटोनियम और यूरेनियम निकालने के लिए इसे पुनःप्रॉसेस करते हैं। ये देश इससे सीजियम, स्ट्रोंटियम और रूथेनियम जैसे अन्य तत्वों को भी पुनः निकालते हैं, जो कैंसर के उपचार और नेत्र कैंसर चिकित्सा में काम आते हैं। बचे हुए एक से तीन फीसदी नाभिकीय ईंधन के कचरे को भंडारण में संग्रहीत किया जाता है। भारत कचरे को कांच के साथ मिलाकर स्थिर भी करता है, जिसे भंडारण की सुविधाओं में निगरानी में रखा जाता है। हालांकि इस दृष्टिकोण के साथ भी दिक्कत है। रमना के मुताबिक, 'प्लूटोनियम और यूरेनियम के अलावा इस्तेमाल किए गए सारे नाभिकीय ईंधनों में मौजूद रेडियोधर्मी कचरे जल्दी या कुछ समय के बाद पर्यावरण में प्रवेश करते हैं और हमें नुकसान पहुंचाते हैं।' वह आगे बताते है- 'प्लूटोनियम और यूरेनियम भी दूसरे रिएक्टरों में पुन- इस्तेमाल किए जाते हैं जो बाद में रेडियोधर्मी कचरे में बदलते हैं। यही वजह है कि फिनलैंड, कनाडा, फ्रांस और स्वीडन जैसे देश इस्तेमाल किए खर्च किए गए नाभिकीय ईंधन के कचरे से निपटने के लिए गहरे भूवैज्ञानिक भंडारों की ओर देख रहे हैं। फिनलैंड ऐसा पहला देश होगा, जो ओंकालों में नाभिकीय कचरे को स्थायी तौर पर संग्रहीत करेगा। उसकी योजना नाभिकीय ईंधन के कचरे को जंग-प्रतिरोधी तांबे के कनस्तरों में बंद करना है। जो बदले में, पानी को अवशोषित करने वाली मिट्टी की एक और परत में समाहित हो जाता है। इसके बाद भी बचे हुए कचरे को भूमिगत सुरंग में दबा दिया जाता है। वीटीटी की परियोजना निदेशक एरिका हॉल्ट ने कहा कि फिनलैंड दुनिया भर के देशों और अपने सहयोगियों के साथ इस अनुभव को साझा करेगा। वह कहती हैं- 'हालांकि हर देश ओर उसके कार्यक्रम को अपने लिए नतीजे खुद ही तलाशने होंगे। हम नाभिकीय ऊर्जा और उसके कचरे के प्रबंधन के लिए पूरी दुनिया के साथ मिलकर काम करेंगे और कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन लक्ष्यों को हासिल करेंगे। परियोजना से जुड़े विशेषज्ञों ने कहा कि चालीस सालों के सैद्धांतिक और प्रयोगशाला- आधारित शोधों के बाद यह पाया गया है कि भूगर्भ भंडारण सुरक्षित हैं। हॉल्ट ने विस्तार से बताया कि मिट्टी के नीचे की चट्टान, रेडियोधर्मी स्रावों से पर्यावरण जैसे जल निकायों और वायु को बचाने के लिए प्राकृतिक अवरोध तैयार करती है। मिट्टी और तांबे का उपयोग यह सुनिश्चित करने के लिए एक सुरक्षात्मक परत प्रदान करता है कि भूकंप जैसी किसी भी चरम स्थिति के पैदा होने पर भी कोई स्राव न हो। हालांकि रमना तर्क देते हैं कि सुरक्षा से जुड़े सैद्धांतिक-शोध पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं हैं। उनके मुताबिक, जलवायु-परिवर्तन सहित विभिन्न दीर्घकालिक प्राकृतिक प्रक्रियाओं और लंबी अवधि में मानव-व्यवहार की अप्रत्याशितता से उत्पन्न होने वाली अनिश्चितताएं इसमें बाधा बन सकती हैं।' वह आगे कहते हैं कि इसके अलावा डिजाइन के नाकाम होने से भी ओंकेलो की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। जैसे कि कुछ वैज्ञानिकों को डर है कि तांबे का कनस्तर टूट सकता है या उसमें दरार आ सकती है। फिनलैंड में तांबे का चुनाव इसलिए किया गया क्योंकि इसका क्षरण धीमे होता है। हालांकि स्टॉकहोम में केटीएच रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के केमिस्ट, पीटर स्जाकालोस इसे लेकर निश्चिंत नहीं हैं। 2007 के एक अध्ययन में स्जाकालोस और उनकी टीम ने पाया कि शुद्ध, ऑक्सीजन-मुक्त पानी में तांबे का क्षरण हो सकता है। उन्होंने साइंस से कहा,- 'यह केवल समय की बात है इसमें दशकों लग सकते हैं या फिर सदियां, जिनमें ओंकेलो में अमिश्रित तांबे के कनस्तरों में क्षरण होना शुरू हो सकता है।' नाभिकीय कचरे के निस्तारण के एक बड़े पायलट प्लांट में हुई एक दुर्घटना, भी चिंता का विषय है। जिसमें 14 फरवरी 2014 को रेडियोधर्मी तत्व जैसे कि एमरिकियम और प्लूटोनियम, भूमिगत भंडारण से रिसाव कर बाहर निकल गए थे। रमना कहते हैं- 'उस भूमि भंडारण के बनने के केवल दो दशक बाद ही वह दुर्घटना हुई थी, फिर यह कैसे माना सकता है कि ओंकेलो सदियों तक सुरक्षित तौर पर काम करते रहेंगे ?

साभार - डाउन टू अर्थ

पोषण सुरक्षा में मजबूती

सरकार ने सन 2024 तक पूरे देश में चरणबद्ध ढंग से पोषणयुक्त चावल की आपूर्ति सुनिश्चित करने का निर्णय लिया है ताकि कुपोषण की समस्या को दूर किया जा सके। हालांकि आबादी के एक बड़े हिस्से को भारी भरकम सब्सिडी और कुछ मामलों में तो निःशुल्क अनाज वितरण के कारण बड़े पैमाने पर भूख और भूख के कारण होने वाली मौतों के मामलों का प्रबंधन करने में काफी मदद मिली है लेकिन अल्पपोषण और असंतुलित पोषण अभी भी न केवल बरकरार है बल्कि इसमें इजाफा देखने को मिल रहा है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के निष्कर्षों के मुताबिक 15 से 49 वर्ष आयु वर्ग में रक्त की कमी का सामना कर रही महिलाओं की तादाद 2015-16 के 53 फीसदी से बढ़कर 2019-20 में 57 फीसदी हो गई। इससे भी बुरी बात यह कि लौह तथा अन्य जरूरी पोषक तत्त्वों की कमी से जूझ रहे पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों की तादाद बढ़कर 67.1 फीसदी पहुंच गई, यानी इस अवधि में उनमें सालाना लगभग 8 फीसदी की दर से बढ़ोतरी हुई। पोषण संबंधी ऐसी विसंगति बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है जिसका नतीजा ठिगनेपन और वजन की कमी के रूप में सामने आता है। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि 2021 के वैश्विक भूख सूचकांक में भारत को 116 देशों में 101वां स्थान मिला और वह पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल जैसे पड़ोसी देशों से भी पीछे रहा। आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति की पिछली बैठक में मिली मंजूरी के मुताबिक लौह युक्त चावल की आपूर्ति की योजना से ठिगनेपन और कम वजन की समस्या में दो फीसदी तथा महिलाओं और बच्चों की रक्त अल्पता में सालाना 9 फीसदी की कमी आने की संभावना है। यह चावल लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस), एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम, स्कूली बच्चों के लिए मध्याह्न भोजन योजना (जिसे अब पीएम-पोषण का नाम दे दिया गया है) तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से वितरित किया जाना है। इस योजना पर लगभग 2,700 करोड़ रुपये वार्षिक व्यय होने का अनुमान है जो कुल खाद्य सब्सिडी के करीब दो फीसदी के बराबर होगा। इसे केंद्र द्वारा वहन किए जाने का प्रस्ताव है। अधिकारियों का दावा है कि इससे स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में तकरीबन 50,000 करोड़ रुपये की बचत होगी। फिलहाल 2019 से चल रही एक प्रायोगिक परियोजना के तहत 11 राज्यों के एक-एक जिले में पोषणयुक्त चावल की आपूर्ति टीपीडीएस के माध्यम से की जा रही है। हालांकि पोषण विशेषज्ञ इस बात को लेकर बहुत आशान्वित नहीं हैं कि यह चावल रक्त अल्पता और अल्पपोषण को समाप्त करने के लक्ष्य को पूरा करने में कुछ खास मदद कर पाएगा।

KAR_20_APRIL_2022.qxd 20-04-2022 14:38 Page 4

लैंडफिल से निकलने वाली मीथेन को ऊर्जा में बदलकर ग्रीनहाउस गैस पर लगेगी लगाम

नई दिल्ली। दुनिया भर में इंसान हर साल अरबों टन ठोस कचरा पैदा करते हैं। इस कचरे का लगभग 70 फीसदी हिस्सा लैंडफिल में जमा हो जाता है, जहां यह धीरे-धीरे सड़ जाता है। बेकार पड़ा मलबा एक जटिल पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा है, जो माइक्रोबियल या सूक्ष्मजीव की गतिविधि से भरा हुआ होता है। सूक्ष्मजीवों के विशाल समुदाय कचरे से अपना भोजन करते हैं, इसे उप-उत्पादों में बदल देते हैं, यह मुख्य रूप से कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ 2) और मीथेन होती है।

जबकि अधिकांश लैंडफिल द्वारा मीथेन को कैप्चर कर लिया जाता है और छोड़ दिया जाता है। शोधकर्ताओं ने इस संसाधन का उपयोग करने का सुझाव दिया है, जिसे ईंधन, बिजली में बदला जा सकता है या घरों को गर्म करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी और औद्योगिक सहयोगियों के साथ प्रमुख अध्ययनकर्ता मार्क रेनॉल्ड्स ने लीचेट में पनपने वाले माइक्रोबियल समुदायों का पता लगाया हैं। शुष्क लैंडफिल में पाए जाने वाले विशिष्ट माइक्रोबियल की संरचना और व्यवहार, अधिक उपोष्णकटिबंधीय या समशीतोष्ण जलवायु में समान समुदायों से अलग होता है। लैंडफिल में जमा कूड़े की समय के आधार पर माइक्रोबियल संरचना भी भिन्न होती है। अध्ययन में लैंडफिल के पारिस्थितिकी तंत्र-स्तर के माइक्रोबियल संरचना के बारे में पता लगाया गया है। अलग-अलग पर्यावरणीय परिस्थितियां माइक्रोबियल को प्रभावित करती हैं जो लैंडफिल के भारी हिस्से में विभाजित होता है। बायोडिजाइन स्वेट सेंटर फॉर एनवायर्नमेंटल बायोटेक्नोलॉजी के शोधकर्ता रेनॉल्ड्स कहते हैं कि इन सूक्ष्मजीवों के लिए लैंडफिल एक बड़े कार्बन बुफे की तरह होता है। हमारा कचरा ज्यादातर भारी कागज की तरह है और यह वास्तव में सेल्यूलोज और हेमिकेलुलोज से भरा हुआ है। ये ऑक्सीजन की कमी वाली परिस्थितियों में आसानी से सड़ जाता है। लैंडफिल में उत्पादित गैसों को कैप्चर और उपयोग करने से लैंडफिल उत्सर्जन से जुड़े खतरों को कम करने में मदद मिल सकती है। मीथेन को वायुमंडल में जाने से रोका जा सकता है। इसके अलावा, लैंडफिल गैस को कैप्चर और प्रसंस्करण से जुड़ी ऊर्जा परियोजनाएं राजस्व उत्पन्न कर सकती हैं और समुदाय में रोजगार पैदा कर सकती हैं। न मीथेन-उत्पादक सूक्ष्मजीवों के व्यवहार को बेहतर ढंग से समझ कर, शोधकर्ता इस महत्वपूर्ण संसाधन का उपयोग करने में सुधार करने की उम्मीद करते हैं। संभवतः मीथेन और सीओ 2 - दो शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैसें जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेवार है। लैंडफिल से निकलने वाली ग्रीनहाउस गैसों को वायुमंडल में जाने से सीमित करते हैं।

रेनॉल्ड्स कहते हैं मीथेन-उत्पादक जीवों के संगठनात्मक पैटर्न को चलाने वाले स्रोत तक पहुंचने की कोशिश करने के लिए हम पारिस्थितिक सिद्धांत को अपना रहे हैं। अध्ययन के बहुआयामी विश्लेषण से संकेत मिलता है कि तापमान और घुलने वाले ठोसों के दो प्रमुख पैरामीटर हैं जो उनकी बहुतायत और विविधीकरण को नियंत्रित करते हैं। यह अच्छी खबर है, क्योंकि यह आंकड़े आमतौर पर मासिक आधार पर लैंडफिल साइटों पर नियमित रूप से कैप्चर किया जाता है और उसका सटीक निदान प्रदान कर सकता है, यह पूरी मीथेन उत्पादन में व्यापक रुझानों को बताने वाले संकेत है।

कचरे से ईंधन तक- 2019 में म्युनिसिपल सॉलिड वेस्ट लैंडफिल में मीथेन उत्सर्जन का 15 फीसदी से अधिक हिस्सा था, जो वैश्विक मीथेन उत्सर्जन के तीसरे सबसे बड़ा स्रोत है। जैसा कि अध्ययन में गौर किया है, लैंडफिल से मीथेन का उत्सर्जन एक अरब टन सीओ2 के बराबर होता है, या मोटे तौर पर एक वर्ष के लिए संचालित लगभग 2.2 करोड़ कारों द्वारा उत्पादित ग्रीनहाउस उत्सर्जन के बराबर होता है। आमतौर पर लैंडफिल में सूक्ष्मजीवों द्वारा छोड़े गए अधिकांश मीथेन को बायोगैस के रूप में कैप्चर कर लिया जाता है और बाद में इसे सीओ 2 में परिवर्तित कर दिया जाता है। यद्यपि यह विधि मीथेन के जलवायु पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को सीमित करती है। हालांकि यह लैंडफिल से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की समस्या का एक अल्पकालिक समाधान है। जलवायु पर इसके प्रतिकूल प्रभाव के अलावा, गायब हुआ मीथेन इस मूल्यवान संसाधन को हासिल करने के एक अवसर का प्रतिनिधित्व करता है। अध्ययन का अनुमान है कि अगर आर्थिक और अन्य बाधाओं को दूर किया जाए, तो देश के लैंडफिल का लगभग पांचवां हिस्सा इस तरह के कैप्चर और प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त होगा। वर्तमान में नगर निगम के ठोस अपशिष्ट को नष्ट करने वाले सूक्ष्मजीव लगभग 50 फीसदी मीथेन और 50 फीसदी सीओ2 युक्त लैंडफिल गैस उत्पन्न करते हैं। इन सूक्ष्मजीवों के सूक्ष्म कामकाज को समझकर विशेष रूप से, मिथैनोजन आर्किया, जो मीथेन उत्पादन चक्र में वास्तविक उत्पादक हैं। शोधकर्ताओं को मीथेन उत्पादन में बढ़ावा देने की उम्मीद है। बढ़ी हुई मीथेन को कैप्चर किया जा सकता है और बिजली, बिना कार्बन वाले ईंधन बनाने या घरों को गर्म करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। बाद वाला विकल्प विशेष रूप से आकर्षक है क्योंकि मीथेन के आगे प्रसंस्करण की आवश्यकता नहीं होगी। वैकल्पिक रूप से, माइक्रोबियल समुदायों को संशोधित करने का संभावित रूप से मीथेन उत्पादन को सीमित करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। मोटे तौर पर 80 फीसदी माइक्रोबियल या सूक्ष्मजीवों की विविधता काफी हद तक खोजी नहीं गई है। रेनॉल्ड्स कहते हैं हमारी प्रयोगशालाएं वास्तव में मिथेनोजेन्स में रुचि रखती हैं क्योंकि वे वही चयापचय आर्द्रभूमि में करते हैं, जो उन्हें मीथेन का उच्चतम स्रोत बनाते हैं, या इसके बजाय मानव गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट, वे लैंडफिल में होते हैं।

चूंकि मिथेनोजेन्स, एकल-कोशिका वाले जीव हैं, वे समान रूप से पौधे या खाद्य पदार्थ या कागज उत्पादों का उपयोग कर सकते हैं। जबकि अध्ययन में अन्य लैंडफिल की तुलना में उनके शुष्क लैंडफिल साइट पर समान मीथेन सांद्रता पाई गई, मीथेनोजेन्स के विभिन्न समुदाय भारी मात्रा में मीथेन का उत्पादन कर रहे हैं। अध्ययन से पता चलता है कि माइक्रोबियल का व्यवहार जमा किए गए ठोस कचरे की उम्र पर भी निर्भर करता है। पुराने कचरे की तुलना में नए कचरे का तापमान अधिक होता है और विभिन्न व्यवस्थाओं के अनुसार उनका क्षरण होता है। समय के साथ ठोस कचरे के टूटने पर शुष्कता को बहुत प्रभावित करने के लिए भी दिखाया गया है। रेनॉल्ड्स कहते हैं, लैंडफिल में इन शुष्क जलवायु माइक्रोब्स या सूक्ष्मजीवों का पुनर्गठन होता है। भविष्य में जांच का उद्देश्य इन समुदायों में उनके समशीतोष्ण और आर्द्र समकक्षों के सापेक्ष अंतरों को स्पष्ट करना होगा। उन्होंने कहा आगे के शोध लैंडफिल माइक्रोबियल समुदायों के साथ-साथ बायोस्टिमुलेंट्स या अन्य तकनीकों के उपयोग का पता लगाएंगे जिनका उपयोग मीथेन उत्पादन को संशोधित करने के लिए किया जा सकता है। यह अध्ययन एप्लाइड एंड एनवायर्नमेंटल माइक्रोबायोलॉजी जर्नल में प्रकाशित हुआ है।

साभार - डाउन टू अर्थ

स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्फूर्ति मापने का बीएमआई नहीं उपयुक्त मानक

मुंबई। जीरोधा के मुख्य कार्याधिकारी नितिन कामत ने एक ट्वीट किया जिसमें लिखा था, हम जीरोधाऑनलाइन पर एक स्वास्थ्य कार्यक्रम चला रहे हैं। जिस किसी भी कर्मचारी का बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) 25 से कम होगा उसे बोनस के रूप में आधे महीने का वेतन दिया जाएगा। हमारी टीम में औसत बीएमआई 25.3 है और अगर हम इसे अगस्त तक 24 से नीचे ले आएंगे तो प्रत्येक कर्मचारी को डेढ़ महीने का वेतन बोनस के रूप में दिया जाएगा। इसके बाद उन्होंने एक और ट्वीट किया जिसमें उन्होंने लिखा, मैं जानता हूं कि बीएमआई स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्फूर्ति मापने का श्रेष्ठ पैमाना नहीं है मगर कम से कम शुरू करने के लिए यह सबसे आसान तरीका हो सकता है। जीवन में स्वास्थ्य सहित अन्य प्राथमिकताओं के बीच किसी चीज की शुरुआत करना सबसे अहम बात होती है। उदाहरण के लिए रोजाना 10,000 कदम चलना एक अच्छी शुरुआत मानी जा सकती है। निस्संदेह कार्यालय में सभी तंदुरुस्त एवं ऊर्जावान रहते हैं तो उनकी उत्पादकता बढ़ जाती है। अगर कंपनी निगमित स्वास्थ्य बीमा योजना खरीदती है तो इसका एक फायदा बीमा प्रीमियम में रियायत के रूप में भी मिलता है। कई नए कार्यालयों में जिम होते हैं और लोगों को व्यायाम कराने के लिए प्रशिक्षक भी बुलाए जाते हैं।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008